ISSN No. 2349-4654
नाद - नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 1, अंक : 2, दिसम्बर 2014

लोककला

डॉ. संजीदा खानम
स्वतन्त्र चित्रकार एवं कला अध्यापक केन्द्रीय विद्यालय, सेक्टर-5, द्वारका

डॉ. संजय कुमार साहनी
प्रवक्ता, सार्वजनिक आर्य इन्टर कॉलेज, फीना, बिजनौर

शोध-पत्र

मानव सभ्यता के विकास में मनुष्य की सबसे अमूल्य निधि उसकी संकृति है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है और प्राकृतिक वातावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है तथा विभिन्न प्रकार की कलाओं के माध्यम से अपनी मानसिक भूख को शान्त करता है। संस्कृति मानव के सम्पूर्ण विकास के लिए तथा परम्परा को निर्वाहन के लिए हमें प्रेरित करती है। इन्ही में लोककला भी मानव अभिव्यक्ति की एक कला है। लोककला के दो प्रमुख पोषक तत्व होते है, पहला- परम्परा दूसरा विस्तृत लोक मानस। ललित कलाओं में इनका अभाव रहता है। ललित कला में जब-जब परम्परा का प्रभाव बढ़ा है वह रितिबद्ध हो गयी उनकी प्रगति रूक गयी, किन्तु लोककला की धारा परम्परागत होते हुए भी रितिबद्ध नहीं होती। इसी प्रकार लोककला का दूसरा पोषक तत्व उसका लोक मानस में विस्तार है। लोककलाओं का सर्जक कोई एक व्यक्ति नहीं होता बल्कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली सतत् प्रक्रिया है। संस्कृति के चार स्तम्भ धर्म, इतिहस, कला और लोक जीवन को समेटते हुए लोककला परम्परा की धारा को आगे बढ़ाती है। मूलत: लोककला धार्मिक एवं सामाजिक विषयों पर आधारित होती है। जिसमें चित्र, गीत और नाटक जो धार्मिक एवं समाजिक विषयों पर आधारित होते हैं, इसका प्रमुख कारण लोक परम्पराओं का धर्म के साथ गहराई से जुड़ा होना है, तथा मानव समाज को एकता के सूत्र में बाधँना है। लोककला वह तत्व है जो बाह्य आँखों द्वारा नहीं देखी जाती बल्कि उसे अन्तरात्मा से अनुभव किया जाता है, लोककला का आनन्द धार्मिक अनुष्ठान, शादी-विवाह तथा बच्चों के जन्मसंस्कार में प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि उपरोक्त संस्कार इन क्रिया-कलापों के माध्यम से हर्षोउल्लास की भावना दोगुनी बढ़ जाती है। इन आनुष्ठानिक उद्देश्यों और चिंतन के व्यापक अर्थ निहित होते हैं, तथा इन सबका लक्ष्य लोकहित होता है। लोककला (विशेष रूप से चित्र) में रेखा का अपना महत्व होता है तथा गुणता के साथ आनन्ददायक भी होता है। इनमें प्रयोग होने वाला प्रतीक चिन्ह विशेष स्थान रखता है तथा इन प्रतिकों का ज्ञान हमें संस्कारवान बनाता है। जैसे—'बिन्दु से त्रिकोण की उत्पत्ति होती है। तीन सीधी रेखाएं बिन्दुओं पर मिलकर तीन कोण बनाते हैं और तीन के संगम का अर्थ देती है तीन देव-(ब्रह्मा, विष्णु महेश) तीन देवीयाँ (लक्ष्मी, सरस्वती काली) तीन गुण (सत् रज, तम) और तीन अनुभूतियाँ (सत, चित, आनन्द)। अपने आधार पर खड़ा ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण-पर्वत, अग्नि, एवं शिव का प्रतीक है।'[1] इन दोनों को मिलाकर बना षटकोण शिव शक्ति व पुरूष और स्त्री के मिलन से सृष्टि का प्रतिक है। चित्रों में इन्ही प्रतिकों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें धार्मिक एवं सामाजिक विषयों के इन्हीं बिम्ब स्वरूप का प्रयोग होता है इसके साथ ही साथ इनमें प्रयोग होने वाले रंग (जो घर के दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले सामानो से निमार्ण किया जाता है। जैसे- हल्दी से पीला रंग, गोबर से भूरा रंग, चावल को पीसकर सफेद रंग। इन्हीं रंगों से लोक चित्र का निमार्ण दीवार पर शुरू होता है जिसमें न किसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता न ज्ञान। सिर्फ एक दूसरे को चित्रांकन करते देखने के साथ ही चित्रण शुरू हो जाता है जो हमारे परम्परावादी चित्रण पद्धति का प्रमाण माना जाता है। इस परम्परावादी चित्रण में 'मधुबनी चित्र जो बिहार की एक प्रमुख लोकचित्रण विद्या है, वह इस आधुनिक युग में अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रही है इस चित्रण विद्या के चित्रकार-जगदम्बा देवी 1976, सीता देवी 1981 गंगा देवी 1984 को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।'[2] चित्र के साथ ही साथ लोक नाट्य व संगीत नृत्य का भी अपना महत्व है, यह विद्या मुख्य रूप से अपनी बात को दूसरे तक पहुंचाने का सबसे महत्वपूर्ण रास्ता माना जाता है। नुक्कड़ नाटक इसका सशक्त प्रमाण है इसके लिए किसी मंच तथा ड्रेस की आवश्यकता नहीं होती है। इसका मंच रोड़ होता है जिसके किनारे नाटककर्मी अपने पहने हुए कपड़े में नाटक को प्रस्तुत करना शुरू कर देते है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता सामाजिक, धार्मिक विषयों को लेकर प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार लोक गायक अपने क्षेत्रिय भाषाओ में इसको प्रस्तृत करते है छत्तीसगढ़ में प्रचलित पाण्डवानी एकल नृत्य जिसकी प्रस्तुतिकरण समवेत स्वरों में होती है इस विद्या की मशहूर गायिका तीजनवाई है।'[3] यह पाण्डवानी गायकी में मील का पत्थर सावित कर चुकी है। वह कहती है कि— पाण्डवानी गीत हमारे छत्तीसगढ़ की शान है इसे हम गाकर विश्व में छत्तीसगढ़ की ख्याति फैला रही हूँ जिससे लोग आनन्द प्राप्त कर तृप्त

होते हैं। इसके अलावा 'मिट्टी के बने विभिन्न प्रकार के खिलौने जो मनोरंजन के साथ ही साथ धनोपार्जन का भी साधन है इन खिलौनों का निर्माण एक कठिन प्रक्रिया तथा श्रम साद्य क्रिया है इसका निर्माण पूरे भारत में होता है तथा प्रत्येक क्षेत्र का अपना मूर्ति बनाने तथा अलंकृत करने की प्रक्रिया अलग होती है लेकिन विषय लगभग एक समान होता है' लोककला के जितने माध्यम हैं वह भारतीय संस्कृति की पहचान है तथा उसमें काम करने वाले कलाकार अपनी दृष्टा तथा चेष्टा के कारण विश्व में अलग पहचान बनाने के साथ ही साथ लोगों को प्रेरित भी करते हैं। लेकिन ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है जो लोग लोककला में पूर्णत: समर्पित है वह शोहरत के मोहताज नहीं है। बस्तर के नगरनार गाँव के श्री झितरूराम सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में से एक है वे कहते हैं— 'मिट्टी के साथ हमारा बचपन से रिश्ता है तथा हमारे लिए एक साधना है जिसके कारण फ्रांस अमेरिका में आयोजित भारत महोत्सव में शिरकत कर चुका हूँ।'[5]

उपरोक्त विचारों से यह तथ्य सामने आता है कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अगर अपने आपको स्थापित करना है तो हमें अपने लोककलाओं को आत्मसात करना होगा, क्योंकि आधुनिक विद्या तो विश्व के प्रत्येक देश में एक जैसा विकास होता है बस थोड़ा सा अन्तर हो सकता है, परन्तु लोककला तो प्रत्येक देश की पहचान मानी जाती है इसीलिए जहाँ विश्व में अपनी पहचान बनाने वाली बात होती है तो सभी देश के कलाकार अपने अतीत को खंगालते हुए लोककलाओं के माध्यम से अपनी संस्कृति रूप रेखा प्रस्तुत कर विश्व का ध्यान आकर्षित करते हैं।

लोककला सदैव 'वसुद्यैव कुदुम्बकम' के सिद्धान्तों को लेकर चलती है, कलाओं के माध्यम से, मानवीयता से विभुषित, सबके कल्याण की बात तथा प्रत्येक के लिए सहज भाव अंकुरित हो, कलाओं के द्वारा पवित्रता का भाव जागृत हो, मनोबल सदा ऊँचा बना रहे, तथा विचारों की शुद्धता बनी रहे, इन्ही लोक भावनाओं सामुदायिक चेतना से ओत-प्रोत कला हमेशा प्रेरित करती है, जो हमें किसी भी क्षेत्र में सृजन करने की क्षमता प्रदान करती है।

निष्कर्ष

सामाजिक जीवन में कला एक घरोहर है। संस्कृति, संस्कारों और परम्पराओं की लोककलाओं का जन्म मानव विकास के साथ जुड़ा हुआ है। लोककला हमेशा से मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा है। किसी राष्ट्र अथवा समाज की सभ्यता के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने हेतु उसे कला अध्ययन के माध्यम से भलि-भांति जाना जा बनाता है। लोककला वास्तव में मनुष्य को मनुष्यक बनाता है, क्योंकि कला हमेशा जोड़ने का कार्य करती है जो समाज की एकता व आदर्श के लिए दृढ़ता के साथ स्थूल बनी रहती है, लोककला हमेशा समाज के प्रत्येक वर्ग का ध्यान रखती है, जिसमें किसी प्रकार का विघटन नहीं रहता। लोककला रूपी ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत तरीके से बातों ही बातों में एक दूसरे को दे दिया जाता है जो हम लाख पोथियाँ पढ़ डाले फिर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. कला त्रैमासिक, हृदय गुप्र-लोक जीवन में कला पृष्ठ संख्या- 05, 06
2. रीता प्रताप—भारतीय चित्रकला एवं मुर्तिकला का इतिहास पृष्ठ 304, 305
3. भारतीय कला एवं संस्कृति, लेखक विरेन्द्र सिंह, पृष्ठ 260
4. समकालीन कला, लेखक-अजय कुमार शर्मा, पृष्ठ 93
5. मध्य प्रदेश के मिट्टी शिल्प, लेखक बसन्त निरगुणे, पृष्ठ 63

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कला त्रैमासिक, हृदय गुप्र- लोक जीवन में कला, राज्य ललित कला अकादमी उ.प्र. लखनऊ

रीता प्रताप—भारतीय चित्रकला एवं मुर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर

भारतीय कला एवं संस्कृति, लेखक विरेन्द्र सिंह, अरिहन्त पब्लिकेशन, मेरठ

समकालीन कला, लेखक-अजय कुमार शर्मा, ललित कला अकादमी नई दिल्ली

मध्य प्रदेश के मिट्टी शिल्प, लेखक बसन्त निरगुणे, मध्य प्रदेश आदिवासी लोककला परिषद् भोपाल